|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

2/3 (श्लोक 10-22), रविवार, 18 मई 2025

विवेचक: गीताविद् श्री प्रणव जी पटवारी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/C4Y1Y2XO-uo

सर्वव्यापी परमात्मा तथा उनकी अभिव्यक्तियाँ

सुमधुर एवम् आत्मशुद्धि करने वाले कर्ण प्रिय भगवत् भजनों के पश्चात् ईश्वर की असीम अनुकम्पा एवं गुरुदेव के आशीर्वाद से आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ भगवान श्री कृष्ण की प्रार्थना एवं दीप प्रज्वलन से हुआ। आज श्रीभगवान् द्वारा उच्चारित श्रीमद्भगवद्गीता के विवेचन सत्र में नवम् अध्याय के श्लोक क्रमाङ्क दस से अध्याय का मनन-चिन्तन प्रारम्भ किया गया। जो श्लोक क्रमाङ्क बाईस तक चला।

जैसा कि इस अध्याय के नाम राजविद्याराजगुह्ययोग से ही विदित होता है कि इस अध्याय में समस्त रहस्यों के रहस्य निहित हैं, चाहें वे लौकिक हों अथवा पारलौकिक।

इस अध्याय की महत्ता एक तथ्य से सिद्ध होती है, जो इस प्रसङ्ग में निहित है-
ज्ञानेश्वरी नामक ग्रन्थ की रचना द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता जी के सर्वोत्तम भाष्य के रचयिता ज्ञानेश्वर महाराज जी ने जब अपने समाधि स्थल, आलन्दी, जो आज सिद्धेश्वर महाराज हैं, में समाधिस्थ होने हेतु स्थान ग्रहण किया, तत्क्षण उनके समक्ष उनके द्वारा रचित ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ का अध्याय नवम् उपलब्ध था।

इस घटना के माध्यम से हम इस अध्याय की महत्ता को जान सकते हैं। इस विलक्षण अध्याय के द्वारा श्रीभगवान् स्वयं के सम्पूर्ण स्वरूप को विस्तारित रूप से अर्जुन के सम्मुख तथा अर्जुन को निमित्त बना हम सभी के सम्मुख प्रकट करते हैं।

इस नवम् अध्याय के प्रथम विवेचन सत्र में हम श्लोक क्रमाङ्क नौ तक का विवेचन चिन्तन कर चुके हैं।
आज के सत्र में हम श्लोक क्रमाङ्क दस से उसका चिन्तन प्रारम्भ करेंगे।

9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः(स्), सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते।।9.10।।

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। हे कुन्तीनन्दन ! इसी हेतु से जगत का (विविध प्रकार से) परिवर्तन

होता है।

विवेचन- श्रीभगवान् इस श्लोक के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि सृष्टि के निर्माण में उनकी क्या भूमिका है?

समस्त वैज्ञानिकों एवं विचारकों को सृष्टि के निर्माण से सम्बन्धित कुछ प्रश्न सताते हैं-

- विश्व का निर्माण कैसे हुआ?
- विश्व का निर्माण क्यों हुआ?
- विश्व निर्माण में श्रीभगवान् की क्या भूमिका है?

वैदिक साहित्य में छः दर्शन हैं-

- योगदर्शन
- साङ्ख्यदर्शन
- वैशेषिकदर्शन
- न्यायदर्शन
- मीमांसा
- ब्रह्मसूत्र

साङ्ख्यदर्शन में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की निर्मिति कैसे हुई? उस समस्त प्रक्रिया का वर्णन सहित पच्चीस तत्त्वों का वर्णन मिलता है। उसमें मूल प्रकृति से सृष्टि का कैसे प्रादुर्भाव हुआ, उसका विस्तार विवरण आता है।

मूल प्रकृति के महत् तत्त्व- अहङ्कार (सत्, रज, तम) पञ्च महाभूत, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन।

- अंतःकरण (3) : मन, बुद्धि, अहंकार
- ज्ञानेंद्रिये (4) : नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कर्ण
- कर्मेंद्रिये (5) : पाद, हस्त, उपस्थ, गुद, वाणी
- तन्मात्रा (5) : गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द
- महाभूत (5) : पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश

सम्पूर्ण सृष्टि निर्माण की एक प्रक्रिया है, इस क्रमबद्ध प्रक्रिया के माध्यम से प्रकृति से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

क्या प्रकृति स्वतः ही सृष्टि की उत्पत्ति कर सकने हेतु सक्षम है? यह एक मूलभूत प्रश्न है।

श्रीभगवान् इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देते हैं कि
हे कुन्तीपुत्र यह भौतिक प्रकृति मेरी शक्तियों में से एक है तथा मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है, जिससे समस्त चर-अचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। इसके शासन में यह जगत् निरन्तर सृजित एवं विनष्ट होता रहता है।

"श्रीभगवान् की सृष्टि में उपस्थिति को चलचित्र के पर्दे के माध्यम से प्रस्तुत किया गया"

इसे चलचित्र एवं उसमें प्रयुक्त पर्दे के एक उदाहरण द्वारा भली प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है-

यह सर्वविदित है कि चलचित्र में दृश्यों को प्रदर्शित करने हेतु पर्दे की आवश्यकता होती है। पर्दे की अनुपस्थिति में चलचित्र के दृश्यों को देख पाना असम्भव है। परन्तु जब हम पर्दे पर कोई दृश्य देखते हैं, चाहे वह चलचित्र में घटित किसी दृश्य में अग्नि काण्ड का हो या बाढ़ आदि का। न तो अग्नि काण्ड के उस दृश्य से पर्दे में अग्नि की ज्वाला ही उत्पन्न होती है, न ही बाढ़ आने पर वह पर्दा जल से प्रभावित होता है अर्थात् चलचित्र में चल रही समस्त घटनाओं से सदैव अछूता रहता है।

यदि एक बार को हम पर्दे के बिना ही चलचित्र के अस्तित्व पर विचार करें तो पाते हैं कि पर्दे के बिना चलचित्र का कोई अस्तित्व ही नहीं है परन्तु यही चलचित्र समाप्त हो जाता है तब भी पर्दा अपने स्थान पर अडिग रहता है, उसका अस्तित्व सदैव बना रहता है।

उसी प्रकार श्रीभगवान् भी स्वयं के स्वरूप में तब भी विराजित होते हैं जबकि यह सृष्टि अस्तित्व में नहीं होती। परन्तु श्रीभगवान् की अनुपस्थिति में प्रकृति द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति पूर्णतः असम्भव है। अत: ज्ञानी व्यक्ति यह उचित प्रकार समझ लेता है कि यह जो सृष्टि है तथा उसमें उपस्थित समस्त चर-अचर, जो जन्म-मृत्यु के सतत् चक्रों में उलझे हुए हैं, मात्र एक चलचित्र की भाँति हैं।

जिसकी कल्पना भी श्रीभगवान् के अधिष्ठान के बिना असम्भव है। यह मात्र श्रीभगवान् के लीलामयी स्वरूप के दर्शन हैं। परन्तु उनकी लीला के स्वरूप में गतिमान यह क्रीड़ा उनके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से न हो कर, उनके सान्निध्य में प्रकृति द्वारा निर्मित एक सुन्दर चित्र है।

प्रकृति श्रीभगवान् के अधिष्ठान से सम्पूर्ण खेल खेलती है, जो त्रिगुणमयी है अर्थात् सत्, रज तथा तम युक्त।

अत: जो मेरे इस स्वरूप को नहीं जानता वह मूढ़ मति है, अज्ञानी है।

9.11

अवजानन्ति मां(म्) मूढा, मानुषीं(न्) तनुमाश्रितम्।
परं(म्) भावमजानन्तो, मम भूतमहेश्वरम्।।9.11।।

मूर्ख लोग मेरे सम्पूर्ण प्राणियों के महान् ईश्वररूप श्रेष्ठ भाव को न जानते हुए मुझे मनुष्य शरीर के आश्रित मानकर अर्थात् साधारण मनुष्य मानकर (मेरी) अवज्ञा करते हैं।

विवेचन-

अज्ञानी पुरुषों के लक्षण

श्रीभगवान् जो इस प्रकृति द्वारा सृष्टि निर्माण में अधिष्ठाता होते हुए भी सृष्टि निर्माण तथा उसके कार्यकलापों से सर्वदा मुक्त हैं। वे सृष्टि के किसी भी प्रसङ्ग में सङ्लग्न नहीं हैं। जो अज्ञानी जीव श्रीभगवान् के प्रभाव को नहीं जानते। जो मुझे अर्थात् ईश्वर को साधारण मानव मान, उनका अनादर करते हैं। श्रीभगवान् उन मनुष्यों को इस श्लोक में मूढ़ सम्बोधित करते हैं।

।।अर्जुन की श्रीभगवान् के परब्रह्म स्वरूप से अनभिज्ञता।।

वे परम तत्त्व को मनुष्य देह में सीमित करने का प्रयास करते हैं। हम श्रीमद्भगवद्गीता जी के चौथे अध्याय में अर्जुन को भी कुछ इसी प्रकार की भूमिका में देखते हैं। वे श्रीभगवान् को अपना सखा, गुरु आदि मानते हैं, वे उन्हें अपना सर्वस्व मानते हैं परन्तु विश्व के रचनाकार श्रीभगवान् स्वयं परब्रह्म हैं, इस विषय में अनभिज्ञ हैं।

अर्जुन के इस विचार को अध्याय चतुर्थ के श्लोक स्पष्टत: प्रकट करते हैं-

श्रीभगवानुवाच

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।4.1।।

अर्थात् श्रीभगवान कहते हैं कि मैंने इस सनातन योग विज्ञान को सूर्यदेव विवस्वान को सिखाया, जिन्होंने इसे मनु को दिया और मनु ने इसे इक्ष्वाकु को सिखाया।

तब अर्जुन कहते हैं कि-

अर्जुन उवाच
अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति।।4.4।।

अर्थात् अर्जुन ने कहा कि आप विवस्वान के बहुत बाद में पैदा हुए थे। मैं कैसे समझूँ कि आपने प्रारम्भ में उसे यह विद्या सिखाई थी?
तब अर्जुन के इस भ्रम को समाप्त करने के उद्देश्य से श्रीभगवान् कहते हैं कि-

श्रीभगवानुवाच
बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।4.5।।

हे अर्जुन! तुम्हारे और मेरे अनेक जन्म हुए हैं। हे परन्तप! तुम उन्हें भूल गए हो, यद्यपि मुझे वे सब याद हैं।

श्रीभगवान् वर्णित करते हैं कि अज्ञानीजन, जो समस्त जीवों के सृष्टिकर्ता के रूप में मेरी अनुभवातीत प्रकृति से अनजान हैं, वे मानव शरीर के भीतर भी मेरी उपस्थिति को नहीं मानते या जो ईश्वर निराकार मानते हुए मूर्ति पूजा को सर्वथा वर्जित बताते हैं। वे भी परम तत्त्व के सर्वव्यापी स्वरूप को नहीं स्वीकारते यद्यपि विग्रह पूजन हमारे वैदिक शास्त्रों में उल्लिखित है।

प्रकृति के कण-कण में श्रीभगवान् विराजित हैं। वे सर्वयापकता के कारण मूर्ति में भी विद्यमान हैं परन्तु उन्हें किसी एक रूप में सीमित भी नहीं किया जा सकता।

हम शिवलिङ्ग की उपासना करते हैं, परन्तु हमें यह भी ज्ञात है कि शिव तत्त्व तो सर्वव्यापी है।

पण्ढरपुर विट्ठल मन्दिर- विठोबा के दर्शनार्थ सैकड़ों भक्त जाते हैं क्योंकि विठोबा के विग्रह में उनकी आस्था है, श्रीभगवान् विग्रह रूप में विराजित हैं। चूँकि वे सर्वव्यापी भी हैं तथा प्रत्येक मनुष्य के हृदय में वे व्याप्त हैं अत: ऐसा मानते हुए उनके समस्त भक्त एक-दूसरे को प्रणाम करते हुए अभिनन्दन करते हैं।

ऐसा ही एक प्रसङ्ग नामदेव महाराज जी का भी है, जो सर्वव्यापी श्रीभगवान् की उपस्थिति से अनभिज्ञ थे।

उनके इस आचरण को ज्ञानेश्वर महाराज की बहन मुक्ताई ने पहचाना तत्पश्चात् ज्ञानेश्वर महाराज ने उन्हें ज्ञान प्राप्ति हेतु सद्गुरु विशोभा खेचर के अधीनस्थ सेवा करने का आदेश दिया।

जैसे ही नामदेव महाराज अपने गुरु के दर्शन करने मन्दिर के गर्भगृह पहुँचते हैं उन्हें वहाँ क्या दृष्टिगोचर होता है कि गुरुदेव के पग शिवलिङ्ग के ऊपर हैं, वे अचम्भित हो, अपने गुरुदेव से शिवलिङ्ग के ऊपर से अपने पग हटाने का आग्रह करते हैं तब विशोभा खेचर महाराज अपनी वृद्धावस्था के कारण अपने पग हटाने में असमर्थता व्यक्त करते हुए उन्हीं से चरणों को वहाँ से नीचे उतारने का आग्रह करते हैं। गुरु जी द्वारा प्राप्त अनुमति के चलते नामदेव महाराज जब अपने गुरु का पग शिवलिङ्ग से पृथक् करते हैं तब पग को दूसरे स्थान पर रखते ही एक नवीन शिवलिङ्ग पुनः इनके चरणों के नीचे प्रकट हो जाता है। यह देख नामदेव महाराज बहुत आश्चर्यचकित हुए। अब वे जहाँ-जहाँ गुरुदेव के चरणों को स्थापित करते शिवलिङ्ग वहीं प्रकट हो जाता। अत: नामदेव महाराज इस प्रकरण के द्वारा यह समझ जाते हैं कि श्रीभगवान् सर्वव्यापी हैं।

यहाँ दो तथ्यों की चर्चा करते हैं जो सर्वथा अनुचित हैं-

ईश्वर की सर्वव्यापकता- भगवत् तत्त्व निश्चित सृष्टि ही सर्वत्र व्याप्त है अत: श्रीभगवान् को मात्र मानव मान उन्हें एक मर्यादा में

बाँधना सर्वथा अनुचित है, जैसे दुर्योधन, शिशुपाल आदि ने किया। वे श्रीभगवान् को ग्वाला मानते रहे, एक साधारण मनुष्य मानते हुए उनके हेतु मन में द्वेष भाव लिए रहे जबकि श्रीभगवान् सर्वव्यापी परब्रह्म हैं।

उनकी देव विग्रह में उपस्थिति- ईश्वर सर्वत्र हैं तब क्या वे किसी विग्रह में उपस्थित नहीं हो सकते।

किसी पन्थ विशेष की धारणा की मूर्तिपूजा व्यर्थ है, विग्रह में ईश्वर हो ही नहीं सकते, उनका यह विचार पूर्णतः अनुचित है।

वह ईश्वर जो सर्वव्यापी है किसी मूर्ति में क्यों नहीं रह सकता?

श्रीभगवान् सर्वशक्तिमान हैं। वे साकार भी हैं एवं निराकार भी। अतः जो उनके इस स्वरूप से भली प्रकार परिचित है, वह पुरुष अज्ञानी नहीं है।
श्रीभगवान् कहते हैं कि अतः हे अर्जुन! मेरे इस स्वभाव को पहचान कर ही मुझे जान सकोगे।

9.12

मोघाशा मोघकर्माणो, मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं(ञ्) चैव, प्रकृतिं(म्) मोहिनीं(म्) श्रिताः।।9.12।।

(जो) आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृति का ही आश्रय लेते हैं, ऐसे अविवेकी मनुष्यों की सब आशाएँ व्यर्थ होती हैं, सब शुभ-कर्म व्यर्थ होते हैं (और) सब ज्ञान व्यर्थ होते हैं अर्थात् जिनकी आशाएँ, कर्म और ज्ञान (समझ) सत्-फल देने वाले नहीं होते।

विवेचन- श्रीभगवान् द्वारा विश्व में उपस्थित मनुष्यों को आध्यात्मिक एवं उनकी भौतिक गतिविधियों के आधार पर दो वर्गों में विभाजित किया है-

- **दैवीय गुण युक्त जीव**
- **आसुरी प्रवृत्ति से युक्त जीव**

अबआसुरी प्रकृति के मनुष्यों को भी, उनके भिन्न-भिन्न कर्मों में सङ्लग्नता के आधार पर तीन अन्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया है-

आसुरी प्रवृत्ति- यह मनुष्य स्वयं के शरीर को विशेष महत्त्व देते हैं।
मुझे क्या भोजन ग्रहण करना चाहिए, मुझे कौन-सा पेय पदार्थ पीना चाहिए? जो मेरी देह को पुष्ट कर सके।

स्वयं की देह के संरक्षण हेतु समस्त प्रयासों में लगे रहते हैं तथा विषय भोगों से युक्त ऐसे व्यक्ति सदैव यही विचार मन में रखते हैं कि-

भस्मि भूतस्य देहस्य पुनरागमन कुतः।।

राक्षसी प्रवृत्ति- स्वयं की स्वार्थ सिद्धि हेतु ऐसे मनुष्य किसी अन्य जीव को हानि पहुँचाने से भी नहीं चूकते। वे अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु किसी अन्य मनुष्य को मृत्यु के घाट उतारने से भी नहीं हिचकते। इस प्रवृत्ति के मनुष्यों की जनसङ्ख्या में वर्तमान समय में निरन्तर वृद्धि हो रही है। कुछ दिन पूर्व की ही भयावह घटना, जो अपने राष्ट्र में घटित हुई बेहद हृदयविदारक एवं मानवता हेतु अत्यन्त निन्दनीय थी जिसमें कुछ आततायियों ने अन्य निर्दोष नागरिकों विशेषतः पुरुषों के धर्म को पूछ, उन्हीं के परिवारों के नेत्रों के समक्ष, उन्हें मृत्यु प्रदान की। उनका यह दुष्कृत्य राक्षसी प्रवृत्ति से प्रेरित था।

मोहिनी प्रवृत्ति- किसी कारण के बिना ही, जिस मनुष्य को किन्हीं दूसरों पर, हिंसा आदि अत्याचार करने में आनन्द मिलता है, ऐसे मनुष्य मोहिनी प्रवृत्ति से युक्त होते हैं।

भर्तृहरि ने अपने एक सुभाषित में कहा है कि-
कुछ प्राणी अपने हित को साधने हेतु दूसरों की हानि करते हैं।
परन्तु इसके विपरीत कुछ ऐसे भी मनुष्य हैं जो बिना किसी औचित्य के, भले ही स्वयं की हानि हो जाए, दूसरों को पीड़ा पहुँचाने से नहीं हिचकते।
मोघ अर्थात् व्यर्थ सोलहवें अध्याय में श्रीभगवान् ऐसे ही मनुष्यों हेतु वर्णित करते हैं कि-

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी।।16.14।।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।।16.15।।

जो जीव इस प्रकार मोहग्रस्त होते हैं, वे आसुरी तथा नास्तिक विचारों के प्रति आकृष्ट रहते हैं। इस मोहग्रस्त अवस्था में उनकी मुक्ति-आशा, उनके सकाम कर्म तथा ज्ञान का अनुशीलन समस्त निष्फल हो जाते हैं।

ज्ञानी रावण— आध्यात्मिक मूढ़ता का प्रतीक
ऐसा नहीं है कि वे मनुष्य अज्ञानी होते हैं। वे भौतिक रूप से शिक्षित परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से मूढ़मति होते हैं। यहाँ लङ्काधिपति रावण का उदाहरण देना श्रेष्ठ रहेगा। वह शिव जी का अनन्य भक्त कहा जाता है। परन्तु वह भगवान शिव का भक्त कहे जाने योग्य नहीं था क्योंकि शिव जी के प्रति उसकी समस्त श्रद्धा एवं आस्था उसकी वासनाओं के वशीभूत थी। वह विवेकहीन, क्रूरशासक था। जिसने शिव-भक्ति की महिमा को कदापि न पहचाना।

इसके विपरीत जिन मनुष्यों का आचरण आसुरी प्रवृत्ति से युक्त मनुष्यों से तनिक भी मेल नहीं खाता अर्थात् महात्मा मनुष्य के लक्षण क्या हैं? यह अगले श्लोक में श्रीभगवान् अर्जुन को समझा रहे हैं।

9.13

महात्मानस्तु मां(म्) पार्थ, दैवीं(म्) प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो, ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।9.13।।

परन्तु हे पृथानन्दन ! दैवी प्रकृति के आश्रित अनन्य मन वाले महात्मा लोग मुझे सम्पूर्ण प्राणियों का आदि (और) अविनाशी समझकर मेरा भजन करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् द्वारा उच्चारित महात्माओं के लक्षण-
हे पार्थ! मोह मुक्त महात्माजन दैवी प्रकृति के संरक्षण में रहते हैं। वे पूर्णत: भक्ति में निमग्न रहते हैं क्योंकि वे मुझे आदि तथा अविनाशी श्रीभगवान् के रूप में जानते हैं।

जन जन मनसो अनन्य मनस: भजन्ति।।
अर्थात् अनन्य हो मेरी सेवा करते हैं।

ज्ञात्वा भजन्ति अर्थात् यह **ज्ञानोत्तर** भक्ति है। यह वह भक्ति हैं जिसमें हम प्रवेश करना चाहते हैं, यह गुरुकृपा से ही सम्भव है। यह साधक भक्ति है।

सुखदेव, सनन्दन, सनत, सनातन एवं **सनतकुमार** जैसे **परमहंस** जो भक्ति करते हैं, वह ज्ञानोत्तर भक्ति कहलाती है।

श्रीमद्भागवद्पुराण में कहा गया है कि-ज्ञानी भी भक्ति करता है परन्तु वह भक्ति कैसी होती है, वह श्रीभगवान् अगले श्लोक में

उच्चारित करते हैं।

9.14

सततं(ङ्) कीर्तयन्तो मां(यँ), यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां(म्) भक्त्या, नित्ययुक्ता उपासते॥9.14॥

नित्य- निरन्तर (मुझ में) लगे हुए मनुष्य दृढ़व्रती होकर लगन पूर्वक साधन में लगे हुए और प्रेम पूर्वक कीर्तन करते हुए तथा मुझे नमस्कार करते हुये निरन्तर मेरी उपासना करते हैं।

विवेचन- यहाँ तीन तथ्यों पर श्रीभगवान् ने विशेष रूप से प्रकाश डाला है-

सततम् कीर्तयन्तो— निरन्तर कीर्तन करते हुए।

श्रीभगवान् को भक्तों द्वारा उनका नाम स्मरण किया जाना बेहद प्रिय है। एक कथानुसार श्रीनारायण देवर्षि नारद से कहते हैं कि मैं बैकुण्ठ धाम में नहीं रहता, मैं कैलाश पर्वत पर नहीं रहता। मैं वहाँ रमता हूँ, जहाँ मेरे भक्त पूर्ण श्रद्धा सहित मेरे भजन गाते हैं।

प्रज्ञाचक्षु गुलाब राव देव जी कहते हैं कि श्रीभगवान् के नाम कीर्तन से सम्पूर्ण अष्टाङ्ग योग को सिद्ध किया जा सकता है तथा यह है श्रीभगवान् के नाम की महिमा।

यतन्तश्च— प्रयास करते हुए।

इस विषय पर ज्ञानेश्वर स्वामी ने बेहद अलौकिक विवेचन किया है। अनुशासन सहित जब भक्त श्रीभगवान् की भक्ति प्राप्त करने हेतु निरन्तर प्रयत्न करते हैं तब इसके परिणाम स्वरूप अष्टाङ्ग योग भी सिद्ध हो जाता है, जो भगवत् प्राप्ति का मार्ग है।

दृढ़व्रताः— सङ्कल्प पूर्वक।

कुछ समय माला फेरना ही उचित नहीं है। श्रीभगवान् हेतु उसमें निरन्तरता सहित दृढ़ता एवं समर्पण तथा भक्ति भी होनी चाहिए। तब जाकर साधक श्रीभगवान् की भक्ति पाने योग्य समर्थ होता है।

नमस्यन्तश्च— भक्ति पूर्वक मुझे नमस्कार करते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि ये महात्मा मेरी महिमा का नित्य कीर्तन करते हुए दृढ़सङ्कल्प सहित प्रयास करते हुए, मुझे प्रणाम करते हुए, भक्तिभाव से निरन्तर मेरी पूजा करते हैं।
भक्त में दृढ़ता, प्रयासरत रहने का सामर्थ्य, अनुशासनशीलता की प्राप्ति, योग की विभिन्न विधियों का चरणबद्ध ढङ्ग से पालन करने से होती है, जो भगवत् प्राप्ति मार्ग में विशेष भूमिका निभाता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि।

एक तथ्य जिसकी पुष्टि स्वयं वासुदेवायन सरस्वती महाराज अपने द्वारा रचयित योग शास्त्र के एक ग्रन्थ में करते हैं कि श्रीभगवान् द्वारा अध्याय पन्द्रह में उच्चारित एक श्लोक—

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते
नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल

मसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।।15.3।।

अर्थात् इस संसार में इस वृक्ष का वास्तविक स्वरूप नहीं देखा जा सकता, न ही इसका आरम्भ, न अन्त, न ही इसका निरन्तर अस्तित्व। लेकिन इस गहरी जड़ों वाले अश्वत्थ वृक्ष को वैराग्य की मजबूत कुल्हाड़ी से काट देना चाहिए।

ज्ञान के अनुशीलन द्वारा प्राप्त वैराग्य की कुल्हाड़ी तो मनुष्य ने प्राप्त कर ली परन्तु अश्वत्थ वृक्ष की जड़ों को नष्ट करने हेतु हमारे हाथों में बल होना भी तो आवश्यक है। बल की प्राप्ति हमें योग से होती है।

श्रीभगवान् भी श्रीमद्भागवद्पुराण में इस मत की पुष्टि करते हुए उद्धव से कहते हैं कि मानव को योग द्वारा ही बल की प्राप्ति होती है जो उन्हें समस्त बन्धनों से मुक्त करने हेतु पर्याप्त होता है।

उद्धव जी श्रीभगवान् से प्रश्न करते हैं कि बल क्या है?
श्रीभगवान् उत्तर देते हैं कि प्राणायाम समस्त बलों का बल है।

पतञ्जली योग सूत्र में भी योग का महत्व वर्णित है। योग को जीवन में लाने हेतु निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है, ताकि मनुष्य को उन समस्त वृत्तियों से मुक्ति मिल जाए, जो किसी भी मनुष्य के स्वास्थ्य हेतु तथा उसके वैराग्य सहित उसके श्रीभगवान् से एकात्म करने के मार्ग को अवरोधित करती हैं।

अभ्यास वैराग्य तन निरोध:।।
प्रश्न- अभ्यास किसे कहते हैं?
यत्र स्थितो प्रयत्नोभ्यासा।।

ज्ञानमार्ग द्वारा ईश्वरीय तत्त्व की प्राप्ति हेतु भी योग आवश्यक है। जीवन में योग लाए बिना मनुष्य का दृढ़ सङ्कल्पित होना सम्भव नहीं है। यही हम ग्यारह या इक्कीस बार माला करना चाहें तब भी देह की शक्ति की आवश्यकता होती है।

गृहस्थ जीवन में भी योगाभ्यास सम्भव है, उस हेतु हिमालय जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

कपिल मुनि अपनी माता को उपदेश देते हुए कहते हैं कि

मनसैतानि भूतानि प्रणमेद् बहुमानयन् ।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ।। 34 ।।
जो कपिल गीता के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ में उल्लेखित है।

उद्धव जी से श्रीभगवान् अपने उपदेश को समाप्त करते हुए कहते हैं कि

ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति।। प्रणमेद्ण्डवद्भूमावाश्वचण्डालगोखरम् ॥4॥

सन्त ज्ञानेश्वर स्वामी के भी यही वचन हैं-

अखंड अगर्वता होऊनि असती ।
तयांची विनय हेचि संपत्ती ।
जे जयजय मंत्रें अर्पिती । माझ्या ठायीं ।

जिनका सार है—
भगवत् भक्तों में नाम मात्र का भी अहङ्कार नहीं होना चाहिए तथा उन्हें समस्त प्राणियों में श्रीभगवान् का ही वास है, यह विचार रखते हुए सृष्टि में व्याप्त समस्त जीवों के प्रति करुणा रखनी चाहिए। समस्त जीवों के प्रति प्रणम्य भाव रखना चाहिए। निरन्तर श्रीभगवान् के कीर्तन, योगाभ्यास, व्यवस्थित दिनचर्या, अनुशासन, समस्त प्राणियों के प्रति विनय का भाव, इस प्रकार भक्त को श्रीभगवान् की नित्य युक्त हो उपासना करनी चाहिए। इसे एक अखण्ड व्रत मानते हुए भक्त को सदैव इसे धारण करना चाहिए।

9.15

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये, यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन, बहुधा विश्वतोमुखम्।।9.15।।

दूसरे साधक ज्ञान यज्ञ के द्वारा एकीभाव से (अभेद-भाव से) मेरा पूजन करते हुए मेरी उपासना करते हैं और दूसरे भी कई साधक (अपने को) पृथक् मानकर चारों तरफ मुखवाले मेरे विराट रुप की अर्थात् संसार को मेरा विराट रुप मानकर सेव्य-सेवक भाव से (मेरी) अनेक प्रकार से (उपासना करते हैं)।

विवेचन-

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।7.16।।

अर्थात् हे भरतश्रेष्ठ! चार प्रकार के पवित्र लोग मेरी भक्ति में लगे रहते हैं - दुःखी, ज्ञान के जिज्ञासु, सांसारिक सम्पत्ति के चाहने वाले तथा जो ज्ञान में स्थित हैं। ज्ञानी भक्त श्रीभगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं। वे उद्धव जी को ज्ञानी भक्त बताते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि जीव जो ज्ञान के अनुशीलन द्वारा यज्ञ में लगे रहते हैं, वे श्रीभगवान् की पूजा उनके अद्वय रूप में, विविध रूपों में तथा विश्व रूप में करते हैं।

श्रीभगवान् सात्विक ज्ञान को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि
अविभक्तम् च भूतेषु।।

सृष्टि को साधारण मानव दो वर्गों में विभाजित देखता है चर-अचर। परन्तु ज्ञानी पुरुष स्त्री-पुरुष, जीव-जन्तु आदि में कोई भेद न करते हुए समस्त सृष्टि के अभेद्य दर्शन करता है। समस्त जीवात्मा में परमात्मा के स्वरूप का दर्शन ही इस सृष्टि में समरसता के अनुभव का साधन हैं।

शङ्कराचार्य जी का स्वयं विश्वनाथ भगवान् से साक्षात्कार

एक ऐसी ही सुन्दर कथा का उल्लेख शङ्कराचार्य जी द्वारा अपने द्वारा लिखित भाष्य में किया गया है—

एक समय की कथा है कि प्रातः काल जब शङ्कराचार्य महाराज काशी के किसी मार्ग से स्नान करने के उद्देश्य से जा रहे थे तब मार्ग में जाते हुए उनके सम्मुख एक चाण्डाल आ जाता है, जिन्हें वे अपने मार्ग से दूर जाने हेतु कहते हैं।

शङ्कराचार्य जी के इतना कहते ही चाण्डाल ने जो कुछ कहा, तब उस चाण्डाल के वचनों का श्रवण कर शङ्कराचार्य जी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। चाण्डाल कहता है कि आप मुझे अर्थात् मेरे इस शरीर को अपने मार्ग से हटने को कह रहे हैं या मेरी आत्मा को। इन वचनों के श्रवण मात्र से शङ्कराचार्य जी जान जाते हैं कि इस प्रकार के ज्ञान युक्त वचन बोलने वाला यह चाण्डाल कोई साधारण व्यक्ति नहीं है अपितु साक्षात विश्वनाथ हैं।

मनीषा पञ्चक, शङ्कराचार्य जी द्वारा रचित—

जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते
या ब्रह्मादि पिपीलिकान्त तनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी।
सैवाहं न च दृश्य वस्त्विति दृढ प्रज्ञापि यस्यास्तिचेत
चण्डालोस्तु स तु द्विजोस्तु गुरुरित्येषा मनीषा मम ॥

अत: आत्मा का परमात्मा के अंश रूप में दर्शन करते हुए, चींटी से लेकर ब्रह्मा जी तक, इस सम्पूर्ण विश्व को अपने गुरु सदृश्य अनुभव करना ही ज्ञान मार्ग है। ज्ञानी हेतु सम्पूर्ण विश्व श्रीभगवान् बन जाता है।

कर्मयोगी जिस क्षण जगत् की ओर देखता है, उसे प्रत्येक चर-अचर में ईश्वरीय अंश प्रतीत होता है। अत: जब समाज सेवा हेतु कार्य करो तब यह विचार कदापि मन में नहीं उत्पन्न होना चाहिए कि मैं किसी पर उपकार कर रहा हूँ।

ठाकुर रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानन्द जी महाराज से कहते हैं कि शिव भाव से दीनों की सेवा करना। दरिद्र नारायण होते हैं। इस भाव से दरिद्र की सेवा करो।

बहुधा विश्वतोमुखम्।
मेरी सेवा तब भक्ति बन जाती है जब उसमें नाममात्र का अहङ्कार मिश्रित न हो।

वर्तमान में हम सोशल मीडिया के माध्यम से समाज सेवा करने हेतु प्रयासरत रहते हैं, जहाँ प्रसिद्धि एवं सम्मान तो मिल जाता है। परन्तु ईश्वरीय तत्त्व की प्राप्ति असम्भव है क्योंकि श्रीभगवान् दम्भ से कोसो दूर हैं।
अत: यदि श्रीभगवान् को प्राप्त करना है तब हमें अहङ्कार, दम्भ, दर्प आदि जैसे अविवेकपूर्ण विचारों से सर्वथा मुक्त रहते हुए तथा समाज की सेवा ईश्वरीय सेवा, यह मानते हुए करनी होगी।
अगले श्लोकों में श्रीभगवान् स्वयं की विभूतियों का वर्णन करते हैं, जैसा कि उन्होंने दसवें अध्याय में भी किया है।

9.16

अहं(ङ्) क्रतुरहं(यँ) यज्ञः(स्), स्वधाहमहमौषधम्।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यम्, अहमग्निरहं(म्) हुतम्॥9.16॥

क्रतु मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, स्वधा मैं हूँ, औषध मैं हूँ, मन्त्र मैं हूँ, घृत मैं हूँ, अग्नि मैं हूँ (और) हवन रूप क्रिया भी मैं हूँ। जानने योग्य पवित्र, ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद भी मैं ही हूँ। इस सम्पूर्ण जगत का पिता, धाता, माता, पितामह, गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, आश्रय, सुहृद्, उत्पत्ति, प्रलय, स्थान, निधान (भण्डार) (तथा) अविनाशी बीज (भी मैं ही हूँ)। (9.16-9.18)

विवेचन- वैदिक साहित्य में श्रुति, स्मृति एवं पुराण यह तीनों ही महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

- **श्रुति** द्वारा सञ्चलित अनुष्ठानों, जिन्हें श्रोत यज्ञ भी कहते हैं, में श्रीभगवान् ने अपना स्वरूप प्रतिपादित किया है।
- **क्रतु,** स्मृति में पञ्च महायज्ञों का उल्लेख किया है, वह भी श्रीभगवान् स्वयं को कह रहे हैं।
- **स्वधा**— जिस माध्यम से पितरों को अन्न प्रदान किया जाता है, वह भी मेरा ही स्वरूप है अर्थात् तर्पण भी मैं ही हूँ।
- **औषधि**— रोगों के निदान हेतु जो औषधि प्रयोग में लाई जाती है, वह मेरा अर्थात् श्रीभगवान् का ही स्वरूप है।

रोग से मुक्त होने हेतु औषधि ग्रहण करते हुए श्रीभगवान् के स्मरण मात्र से वह औषधि प्रसाद बन जाती है, जिसके सेवन से जीवन में कोई विषाद न रहते हुए, वह औषधि मनुष्य हेतु अमृततुल्य हो जाती है।

- **मन्त्र**—दिव्य ध्वनि(मंत्र)
- **आज्यम्**— घी
- **अग्नि**— अग्नि

- **हुतम्**— आहुति भी मैं ही हूँ।

9.17

पिताहमस्य जगतो, माता धाता पितामहः।
वेद्यं(म्) पवित्रमोङ्कार, ऋक्साम यजुरेव च।।9.17।।

विवेचन-
पिता— पाति रक्षति इति पिता
हम जानते हैं कि ब्रह्मा जी द्वारा इस सृष्टि की रचना हुई है। जो श्रीनारायण का ही स्वरूप हैं। सन्तान को जन्म देने वाले तथा उसका संसार में व्याप्त समस्त बाधाओं से रक्षण करने वाले पिता श्रीभगवान् ही हैं।

माता— ममतामयी माँ भी श्रीभगवान् का ही एक रूप हैं।

धाता— आश्रयदाता।
इस सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण जब श्रीभगवान् द्वारा ही हुआ है। अतः सृष्टि के विधान के रचयिता भी श्रीभगवान् ही हैं। वे परम् नियन्ता हैं।

पितामह—
अब प्रश्न उठता है कि पिता का निर्माण किसने किया?
तब श्रीभगवान् कहते हैं कि पिता का निर्माणकर्ता भी मैं ही हूँ क्योंकि सृष्टि के निर्माता ब्रह्मा जी का प्राकट्य श्रीभगवान् की नाभि से हुआ है।

वेद्यम्— जो भी कुछ ब्रह्माण्ड में जानने योग्य है, वह श्रीभगवान् हैं।

ओंकार— समस्त पवित्रों में जो पवित्र है, वह ऊँकार भी श्रीभगवान् का ही रूप है। यह ईश्वर का एकाक्षरी नाम है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

अर्थात् जो व्यक्ति मुझ परम पुरुषोत्तम का स्मरण करते हुए तथा ॐ अक्षर का जाप करते हुए शरीर से विदा लेता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

मैं ऋग्वेद, सामवेद तथा यजुर्वेद भी हूँ अर्थात् यह जो त्रयीविद्या है, वह श्रीभगवान् का स्वरूप है।

9.18

गतिर्भर्ता प्रभुः(स्) साक्षी, निवासः(श्) शरणं(म्) सुहृत्।
प्रभवः(फ्) प्रलयः(स्) स्थानं(न्), निधानं(म्) बीजमव्ययम्।।9.18।।

विवेचन-

गति— परम लक्ष्य।

समस्त प्राणियों की परम गति मैं ही हूँ। अपने-अपने कर्म बन्धनों के अनुसार जीवात्माओं के जन्म-मृत्यु का चक्र निरन्तर चलता रहता है। ब्रह्मा जी की जब निद्रावस्था आती है तब सम्पूर्ण चराचर जगत का विलय हो जाता है। जीवों को परम गति श्रीभगवान् द्वारा प्राप्त होती है। योगी, तपस्वियों, ज्ञानी उन समस्त मनुष्यों की परम गति श्रीभगवान् ही हैं, चाहें उन्हें साकार माने या निराकार या उनकी किसी भी रूप में वन्दना की जाए। वे सर्वस्व हैं। समस्त विश्व का आदि तथा अन्त भी वे ही हैं।

भर्ता— सम्पूर्ण विश्व के पालनकर्ता भी ईश्वर ही हैं।
समस्त सृष्टि का भरण-पोषण करने वाले श्रीभगवान् ही हैं।

स्वामी— अर्थात् प्रभु। अर्जुन! मैं सबका स्वामी हूँ।
श्रीभगवान् के स्वरूप का इतना विलक्षण वर्णन ज्ञानेश्वर महाराज ने एवं कपिल महाराज ने अपनी माता को उपदेश देते हुए किया है।

साक्षी— मैं समस्त प्राणियों के हृदय में विराजित हो उनके द्वारा किए गए समस्त उचित-अनुचित कर्मों का साक्षी हूँ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।18.61।।

अर्थात् अर्जुन! परमपिता परमात्मा सभी पवित्र के हृदय में निवास करते हैं। उनके कर्मों के अनुसार उन्होंने भटकती मूर्तियों को निर्देशित किया है जो भौतिक शक्ति से निर्मित यंत्र पर सवार होती है।

- **निवास**— धाम, समस्त प्राणियों का निवास स्थान मैं ही हूँ।
- **शरणम्**—शरणस्थली। वे परम शरणस्थली हैं।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।।18.62।।

हे भारत! अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के साथ केवल श्रीभगवान के प्रति समर्पित हो जाओ। उनकी कृपा से तुम्हें पूर्ण शांति तथा शाश्वत धाम की प्राप्ति होगी।

सुहृत— अत्यन्त प्रिय मित्र हूँ।
भगवान् शङ्कराचार्य जी ने श्रीभगवान् द्वारा उच्चारित इस शब्द की बेहद सुन्दर व्याख्या की है—

बिना किसी प्रत्युपकार की अपेक्षा किए जो उपकार किया जाता है।
बिना स्वार्थ तथा अपेक्षा के किया गया प्रेम ही सुहृत कहा जाता है।

"मामनुस्मर युद्ध्य च"

श्रीभगवान् अपने भक्तों से तथा संसार के समस्त प्राणियों के प्रति यह भाव रखते हैं कि तुम मुझे अनुस्मरण करो।
अर्थात् मैं तो सदैव तुम्हें स्मरण करता हूँ अत: माया के बन्धनों में बद्ध हो ऐसा न हो कि तुम मुझे त्याग दो।

- **प्रभव**—सृष्टि

- **प्रलय**— संहार
- **स्थानम्**— सम्पूर्ण सृष्टि का आधार
- स्थान एवं निवास की बेहद अनूठा विवरण रामसुख दास जी महाराज करते हुए कहते हैं कि
- **उत्पत्ति** के पश्चात समस्त जीवों का निवास यह पृथ्वी है।
- **स्थान**— प्रलय के पश्चात समस्त जीवों का स्थान श्रीभगवान् हैं।
- **निधानम्**— आश्रय, समस्त प्राणियों के कर्मों का सङ्ग्रह श्रीभगवान् द्वारा सम्भव है।
- **बीजम् तथा अव्ययम्**— अविनाशी बीज भी श्रीभगवान् ही हैं। सृष्टि का प्रादुर्भाव ही श्रीभगवान् से होता है। वेदान्त की भाषा में कहा जाए तो श्रीभगवान् विश्व के अभिन्तोपदान कारण हैं।

जैसे मकड़ी जाल के निर्माण हेतु धागा कहीं अन्य स्थान से नहीं लाती। वह उसके शरीर से ही उत्सर्जित होता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी स्वयं ही विश्व के निर्माता हैं।

9.19

तपाम्यहमहं(वँ) वर्षं(न्), निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं(ञ्) चैव मृत्युश्च, सदसच्चाहमर्जुन॥9.19॥

हे अर्जुन ! (संसार के हित के लिये) मैं (ही) सूर्य रूप से तपता हूँ, मैं (ही) जल को ग्रहण करता हूँ और (फिर उस जल को) (मैं ही) वर्षा रूप से बरसा देता हूँ (और तो क्या कहूँ) अमृत और मृत्यु तथा सत् और असत् (भी) मैं ही हूँ।

विवेचन- हे अर्जुन! मैं ही तप प्रदान करता हूँ तथा वर्षा को अवरुद्ध तथा प्रदान करता हूँ। मैं अमरत्व हूँ एवं साक्षात मृत्यु भी मैं ही हूँ। आत्मा तथा पदार्थ (सत् एवं असत्) दोनों मुझ में ही हैं।

यहाँ आप विचार कर सकते हो कि ईश्वर कैसे असत् हो सकते हैं? परन्तु यह ज्ञान हमें होना चाहिए कि असत् नाम का कोई पदार्थ नहीं होता। अत: जो हमें असत् अनुभव होता है, वह स्वयं श्रीभगवान् ही हैं।

9.20, 9.21

त्रैविद्या मां(म्) सोमपाः(फ्) पूतपापा,
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं(म्) प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम्,
अश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्।।9.20।।
ते तं(म्) भुक्त्वा स्वर्गलोकं(वँ) विशालं(ङ्),
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं(वँ) विशन्ति।
एवं(न्) त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना,
गतागतं(ङ्) कामकामा लभन्ते॥9.21॥

तीन वेदों में कहे हुए सकाम अनुष्ठान को करने वाले (और) सोमरस को पीने वाले (जो) पाप रहित मनुष्य यज्ञों के द्वारा (इन्द्ररूप से) मेरा पूजन करके स्वर्ग-प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं, वे (पुण्यों के फलस्वरूप) पवित्र इन्द्रलोक को प्राप्त करके (वहाँ) स्वर्ग में देवताओं के दिव्य भोगों को भोगते हैं।
वे उस विशाल स्वर्गलोक के (भोगों को) भोगकर पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आ जाते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में कहे हुए सकाम धर्म का आश्रय लिये हुए भोगों की कामना करने वाले मनुष्य आवागमन को प्राप्त होते हैं।

विवेचन- जो वेदों का अध्ययन करते तथा सोमरस का पान करते हैं, वे स्वर्ग की प्राप्ति की कामना करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से मेरी ही पूजा करते हैं। वे पापकर्मों से शुद्ध होकर, इन्द्र के पवित्र स्वर्गिक धाम में जन्म लेते हैं, जहाँ वे देवताओं सा आनन्द

भोगते हैं।

इस प्रकार जब वे उपासक विस्तृत स्वर्गिक इन्द्रिय सुख को भोग लेते हैं तथा उनके पुण्य कर्मों के फल क्षींण हो जाते हैं तब वे इस पृथ्वी पर पुनः लौट आते हैं। इस प्रकार जो तीनों वेदों के सिद्धान्तों में दृढ़ रहकर इन्द्रिय सुख की कामना करते हैं, उन्हें जन्म-मृत्यु का चक्र ही मिल पाता है।
ज्ञानेश्वर महाराज जीव के स्वर्ग एवं नरक जाने को लेकर बेहद विशिष्ट वर्णन करते हुए कहते हैं कि-

जिस जीव को अपने कर्मों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति होती है, उसके वे कर्म पुण्यात्मक कर्म हैं। जिन कर्मों के द्वारा जीव को नरक की प्राप्ति होती है, वे कर्म पापात्मक कहे जाने चाहिए।

9.22

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां(यँ), ये जनाः(फ्) पर्युपासते।
तेषां(न्) नित्याभियुक्तानां(यँ), योगक्षेमं(वँ) वहाम्यहम्॥9.22॥

जो अनन्य भक्त मेरा चिन्तन करते हुए (मेरी) भली भांति उपासना करते हैं, (मुझ में) निरन्तर लगे हुए उन भक्तों का योगक्षेम (अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त की रक्षा) मैं वहन करता हूँ।

विवेचन-

श्रीभगवान् के शुद्ध भक्त

किन्तु जो लोग अनन्य भाव से मेरे दिव्य रूप का ध्यान करते हैं, उनकी जो आवश्यकताएँ होती हैं, उन्हें मैं पूर्ण करता हूँ तथा जो कुछ भी उनके समीप है, उसकी रक्षा करता हूँ।

श्रीभगवान् अपने उन शुद्ध भक्तों का विशेष ध्यान रखते हैं तथा अपने उन भक्तों की आवश्यकताएँ वे स्वयं पूर्ण करने अपने बैकुण्ठ धाम से आते हैं। यदि वे चाहें तो सोने अनन्य भक्तों की इच्छाओं की पूर्ति योगमाया द्वारा भी कर सकते हैं, चूँकि वे अपने शुद्ध भक्तों के प्रेम से वशीभूत हो, उनके संरक्षण हेतु स्वयं धरा पर प्रकट हो जाते हैं।

समस्त सांसारिक मोह-माया को त्याग जब जीव का अन्त:करण पूर्णत: श्रीभगवान् में लीन हो जाता है। तब उस जीव को ईश्वर की अनन्य भक्ति की प्राप्ति होती है। मन में भौतिक सुखों का तनिक भी विचार जीव को उस परम तत्त्व की प्राप्ति के मार्ग से विचलित कर सकता है।
हम प्राचीन कथाओं को श्रवण कर चुके हैं कि किस प्रकार श्रीभगवान् अपने परम भक्त प्रह्लाद के रक्षण हेतु स्तम्भ को नष्ट कर नरसिंह रूप में प्रकट हुए!

किस प्रकार ध्रुव के नेत्र बन्द कर ध्यान करने पर, श्रीभगवान् ने उनके नेत्रों के खुलने तक स्वयं प्रतीक्षा की?
कैसे जल में डूबते गजेन्द्र के संरक्षण हेतु स्वयं पधारे?
श्रीभगवान् भक्तवत्सल हैं। अत: श्रीभगवान् के अनन्य भक्त बनने हेतु यह सूत्र दिया गया—

- **सततम् कीर्तयन्तो**— वाणी द्वारा श्रीभगवान् का नित्य स्मरण।
- **अनन्या: चिन्तयन्त:**— मन में श्रीभगवान् का निरन्तर चिन्तन।

श्रीभगवान् का स्वरूप कैसा है?

जहाँ मन भी नहीं पहुँच सकता। न ही वाणी ही जा सकती है परन्तु श्रीभगवान् के निरन्तर स्मरण से जीव का अनन्य प्रेम देख परमात्मा स्वयं अपने भक्त के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं।

उपनिषदों में कथन आता है कि

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

मन में श्रीभगवान् के निरन्तर चिन्तन तथा स्मरण से अभिभूत श्रीभगवान् स्वयं भक्त को अप्राप्य वस्तुओं की प्राप्ति कराते हैं। वे हमारी माता भी हैं तथा पिता भी। अत: जिस प्रकार माता-पिता अपने बालक का हित विचार कर, कार्य करते हैं। उसी प्रकार श्रीभगवान् भी अपने शुद्ध भक्तों का विशेष ध्यान रखते हुए, उनके हेतु जो हित कर है, वही विचार धारण करते हैं।

सूत्र— नित्य श्रीभगवान् में रमने का अभ्यास करते रहना आवश्यक है तथा यही जीव हेतु हितकारी भी है।

इसी के साथ आज के विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र का आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- मोहित भैया
प्रश्न- श्रद्धा और भक्ति में क्या अन्तर है?
उत्तर- श्रद्धा भी भक्ति का ही रूप है। श्रद्धा के बिना भक्ति नहीं हो सकती है। सत्रहवें अध्याय में श्रद्धा तीन प्रकार की बताई गई है -
सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। यह मनुष्य की प्रवृत्ति के अनुसार होती है। श्रद्धा भक्ति को पुष्ट करती है और भक्ति की पहली अवस्था श्रद्धा होती है। जब श्रद्धा धारण हो जाती है तो वह रति का रूप लेने लगती है अर्थात अब हम श्रीभगवान् के बिना नहीं रह सकते हैं। उसके बाद अगली अवस्था पर भक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

प्रश्नकर्ता- ललितेश भैया
प्रश्न- बारहवें श्लोक में क्या कहा गया है?
उत्तर-

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।।9.12।।

इसमें तीन प्रकार के लोगों का वर्णन किया गया है-
राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रवृत्ति के लोग।
ये तीनों एक व्यक्ति में भी हो सकती हैं। इन श्रेणियों के लोगों की इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है और उनकी इच्छाएँ भी व्यर्थ हैं। भगवत् प्राप्ति के लिए उनके कर्म और ज्ञान सभी व्यर्थ हैं। जिस प्रकार रावण को वेद आदि कण्ठस्थ थे किन्तु उसका यह ज्ञान भगवत् प्राप्ति में सहायक नहीं था।

प्रश्नकर्ता- ललितेश भैया
प्रश्न- भगवत् शरणागति के लिए सबसे सुगम साधन क्या है?
उत्तर- भगवत् शरणागति के लिए सबसे सुगम साधन है जो कुछ भी हम नित्य प्रति करते हैं उसे श्रीभगवान् को अर्पण करते चलें और इस अभ्यास को नित्य प्रति दृढ़ करने का प्रयास करें। यही सबसे सुगम साधन है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।9.27।।

प्रश्नकर्ता- उमा दीदी
प्रश्न- सातवें श्लोक में प्रकृति से क्या तात्पर्य है?
उत्तर- सातवें श्लोक में प्रकृति से तात्पर्य निर्मिति से है। जो श्रीभगवान् के अधिष्ठान में सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण करती है।

प्रश्नकर्ता- रेणु दीदी

प्रश्न- जो लोग भगवान को नहीं मानते हैं वह कहते हैं श्रीभगवान् हमेशा अपना नाम जपने को कहते हैं, अपनी प्रशंसा करवाते हैं और यहाँ कहा गया है कि जब श्रीभगवान् का कीर्तन का नाम जप करते हैं तो श्रीभगवान् वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। इसका क्या तात्पर्य है?

उत्तर- श्रीभगवान् को अपनी प्रशंसा करवाने की कोई आवश्यकता नहीं है और न ही हम में इतना सामर्थ्य है कि हम उनकी प्रशंसा कर सकें। जिनके निःश्वास से वेदों की रचना हुई हो उनकी भला हम क्या प्रशंसा कर पाएँगे! किन्तु श्रीभगवान् को हम अत्यन्त प्रिय हैं। अतः जिस प्रकार माता को अपना पुत्र अत्यन्त प्रिय होता है और जब वह पुत्र अपनी माँ को पुकारता है तो माँ को अत्यन्त प्रसन्नता होती है। यह उसी प्रकार का भाव है। जो प्रेम है वही श्रीभगवान् को लुभाता है, उसी प्रेम के वशीभूत हो कर वे बार-बार जाते हैं।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||